'परीक्षामुख' क्यों विशेष महत्त्वपूर्ण है?

—प्रो. वीरसागर जैन

जैन न्याय के क्षेत्र में आचार्य माणिक्यनन्दि द्वारा रचित 'परीक्षामुख' ग्रन्थ को विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। गंभीरतापूर्वक विचारणीय है कि आखिर उसे इतना अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों माना जाता है, जबकि दूसरे भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। मेरी दृष्टि में परीक्षामुख के विशेष महत्त्वपूर्ण होने के कतिपय कारण निम्नलिखित हैं–

1. यह जैन न्याय को सुव्यवस्थितरूप में प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास है। इससे पहले किसी भी अन्य ग्रन्थ में जैन न्याय का ऐसा एकदम सुव्यवस्थित रूप से प्रतिपादन देखने में नहीं आता है।
2. यह जैन न्याय का प्रथम सूत्र-ग्रन्थ भी है। इससे पूर्व जैनदर्शन के सूत्र ग्रंथ तो तत्त्वार्थसूत्र आदि बन चुके थे, पर जैन न्याय का अभी तक कोई सूत्र-ग्रन्थ नहीं बना था, यही सबसे पहला कार्य था।
3. परीक्षामुख को सूत्रात्मक होने के कारण भी इसे विशेष महत्त्व मिला। तथा यह केवल नाम का सूत्र ग्रन्थ नहीं था। इसके प्रत्येक सूत्र में सूत्र के सभी गुण होने से बड़ी गम्भीरता भी है।
4. यह संस्कृत भाषा में है। संस्कृत भाषा में होने के कारण भी इसे विश्व के विद्वत्-समाज में विशेष महत्त्व मिला। यदि कदाचित् इसे जैनों की पारंपरिक भाषा प्राकृत में लिख दिया जाता तो इसे जैनेतर विद्वत् समाज में इतना समादर प्राप्त नहीं होता।
5. यह सरल-सुबोध और संक्षिप्त भी है, जैसा कि कहा भी गया है– 'सिद्धमल्पं लघीयसः'। परीक्षामुख को बालक भी, एकदम नया व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता है।
6. यह जैन न्याय को क्रमबद्ध रीति से पूर्ण रूप में सांगोपांग प्रस्तुत करता है। यथा– प्रमाण का लक्षण, प्रमाण के भेद, भेदों का वर्णन, प्रमाण का विषय, प्रमाण का फल एवं प्रमाणाभास।
7. इसमें अन्य दर्शनों की अपेक्षाओं को भी ध्यान में रखकर उनका समुचित निराकरण किया गया है। अन्यथा कई बार हम केवल अपनी ही बात कहते रहते हैं, दूसरों की बात पर ध्यान नहीं देते, इसमें दूसरों की बात पर भी ध्यान दिया गया है, उसका सयुक्तिक निराकरण भी किया गया है।
8. इसका मंगलाचरण बहुत उच्च कोटि का है, अत्यन्त सारगर्भित है। यथा–

   प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
   इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः॥

   टीकाकारों ने इस एक छोटे से श्लोक के अनेकानेक महत्त्वपूर्ण अर्थ प्रकाशित किए हैं।
9. यह आचार्य अकलंक के न्यायसमुद्र को मथकर उसमें से अमृत के समान निकालकर प्रस्तुत किया गया है। पहले जैन न्याय को 'अकलंक-न्याय' कहा जाता था। यथा–

   अकलंकवचोम्भोधेरुद्ध्रे येन धीमता।
   न्यायविद्यामृतं तस्मै माणिक्यनंदिने॥ –अनंतवीर्य, प्रमेयरत्नमाला, 2
10. यह लगभग सभी विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में निर्धारित है।
11. इस पर अनेक आचार्यों ने गूढ़ गम्भीर टीकाएँ लिखी हैं, जिनमें प्रभाचंद्र की 'प्रमेयकमलमार्तण्ड', अनंतवीर्य की 'प्रमेयरत्नमाला', अभिनव चारुकीर्ति की 'प्रमेयरत्नालंकार', शांति वर्णी की 'प्रमेयकण्ठिका' और आचार्य वादिदेवसूरि की 'प्रमाणनयतत्त्वालंकार' विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक टीकाएँ हो सकती हैं, हिन्दी-वचनिकाएँ, व्याख्याएँ, गद्यानुवाद-पद्यानुवाद और प्रश्नोत्तरी भी हैं।